क्षमावणी : क्षमापर्व

भारतवर्षमें प्राचीनकालसे दो संस्कृतियोंकी अविराम-धारा बहती चली आ रही है। वे दो संस्कृतियाँ हैं—१ वैदिक और २. श्रमण। 'संस्कृति' शब्दका सामान्यतया अर्थ आचार-विचार और रहन-सहन है। जिनका आचार-विचार और रहन-सहन वेदानुसारी है उनकी संस्कृति तो वैदिक संस्कृति है तथा जिनका आचार-विचार और रहन-सहन श्रमण-परम्पराके अनुसार है उनकी संस्कृति श्रमण-संस्कृति है। 'श्रमण' शब्द प्राकृत भाषाके 'समण' शब्दका संस्कृतरूप है। और यह 'समण' शब्द दो पदोंसे बना है—एक 'सम' और दूसरा 'अण', जिनका अर्थ है सम—इन्द्रियों और मनपर विजयकर समस्त जीवोंके प्रति समता भावका 'अण'—उपदेश करनेवाला महापुरुष (महात्मा-सन्त-साधु)। ऐसे आत्मजयी एवं आत्मनिर्भर महात्माओं द्वारा प्रवर्त्तित आचार-विचार एवं रहन-सहन ही श्रमण-संस्कृति है। इन श्रमणोंका प्रत्येक प्रयत्न और भावना यह होती है कि हमारे द्वारा किसी भी प्राणीको कष्ट न पहुँचे, हमारे मुखसे कोई असत्य वचन न निकले, हमारे द्वारा स्वप्नमें भी परद्रव्यका ग्रहण न हो, हम सदैव ब्रह्मस्वरूप आत्मामें ही रमण करें, दया, दम, त्याग और समाधि ही हमारा धर्म (कर्त्तव्य) है, परपदार्थ हमसे भिन्न हैं और हम उनके स्वामी नहीं हैं। वास्तवमें इन श्रमणोंका प्रधान लक्ष्य आत्म-शोधन होता है और इसलिए वे इन्द्रिय, मन और शरीरको भी आत्मीय नहीं मानते—उन्हें भौतिक मानते हैं। अतः जिन बातोंसे इन्द्रिय, मन और शरीरका पोषण होता है या उनमें विकार आता है, उन बातोंका श्रमण त्याग कर देता है और सदैव आत्मिक चरम विकासके करनेमें प्रवृत्त रहता है। यद्यपि ऐसी प्रवृत्ति एवं चर्या साधारण लोगोंको कुछ कठिन जान पड़ेगी। किन्तु वह असाधारण पुरुषोंके लिए कोई कठिन नहीं है।

संसारमें रहते हुए परस्पर व्यवहार करनेमें चूक होना सम्भव है और प्रमाद तथा कषाय (क्रोध, अहंकार, छल और लोभ) की सम्भावना अधिक है। किन्तु विचार करनेपर मालूम होता है कि न प्रमाद अच्छा है और न कषाय। दोनोंसे आत्माका अहित ही होता है—हित नहीं होता। यहाँ तक कि उनसे पर-का भी अहित हो सकता है—दूसरोंको कष्ट पहुँच सकता है और उनसे उनके दिल दुःखी हो सकते हैं तथा उनके हृदयको आघात पहुँच सकता है।

अतएव इन श्रमणोंने अनुभव किया कि दैवसिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक और वार्षिक ऐसे आयोजन किये जायें, जिनमें व्यक्ति अपनी भूलोंके लिए दूसरोंसे क्षमा मांगे और अपनेको कर्मबन्धनसे हलका करे। साधु तो दैवसिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक और वार्षिक प्रतिक्रमण (क्षमायाचना) करते हैं। पर गृहस्थोंके लिए वह कठिन है। अतएव वे ऐसा वार्षिक आयोजन करते हैं जिसमें वे अपनी भूल-चूक-के लिए परस्परमें क्षमा-याचना करते हैं। यह आयोजन उनके द्वारा सालमें एक बार उस समय किया जाता है, जब वे भाद्रपद शुक्ला ५मीसे भाद्रपद शुक्ला १४ तक दश दिन क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य इन दश धर्मके अंगोंकी सभक्ति पूजा, उपासना और आराधना कर अपनेको सरल और द्रवित बना लेते हैं। साथ ही प्रमाद और कषायको दुःखदायी समझकर उन्हें मन्द कर लेते हैं तथा रत्नत्रय (सम्यक् दृष्टि, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् आचार)को आत्माकी उपादेय निधि मानते हैं। फलतः वे कषाय या प्रमादसे हुई अपनी भूलोंके लिए एक-दूसरेसे क्षमा मांगते और स्वयं उन्हें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षमा करते हैं। ऐसे आयोजनको 'क्षमापर्व' कहते हैं और वह भाद्र मासकी समाप्तिपर आश्विन कृष्ण १ को मनाया जाता है। इस दिन सभी श्रमणोपासक—गृहस्थ और श्रमणोपासिका—गृहस्थनी एक-दूसरेसे अपनी एक सालकी भूलोंके लिए क्षमा-याचना करते हैं और उस समय निम्न मार्मिक भाव-व्यक्त करते हैं—

खम्मामि सव्वजीवाणं सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ती मे सव्वभूदेसु वैरं मज्झं ण केणचिद॥

'मैं समस्त जीवोंको क्षमा करता हूँ और वे मुझे क्षमा करें। समस्त जीवोंपर मेरा मैत्रीभाव है, किसीके साथ मेरा वैर नहीं है।'

इस प्रकारसे क्षमाके वचन—वाणीका परस्परमें व्यवहार होनेसे इस 'क्षमा पर्व'को 'क्षमावाणी' पर्व तथा उस दिन क्षमाकी अवनी—भूमि स्वयं बनने-बनानेसे 'क्षमावनी' या 'क्षमावणी' पर्व भी कहते हैं। निःसन्देह यह पर्व वर्षोंसे या एक वर्षके भरे हुए मनके कालुष्य—मलको धो देता है और मित्रता एवं बन्तुत्वभावको स्थापित करता है।

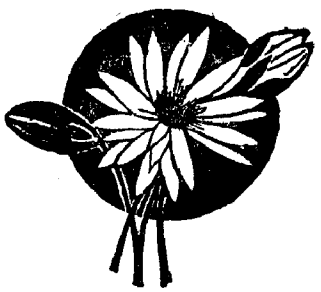

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org